आचार्य रामचन्द्र-गुणचन्द्र एवं उनका नाट्यदर्पण

☐ डॉ० कमलेशकुमार जैन, जैन विश्वभारती, लाडनूं

संस्कृत साहित्य में लाक्षणिक साहित्य का विशेष महत्त्व है। अलंकार-शास्त्र उसका प्रमुख अंग है। अलंकार-शास्त्र के प्रणेताओं में जिनका प्रमुख रूप से नाम लिया जाता है, उनमें भारत, भामह, दण्डी, वामन, आनन्दवर्धन, मम्मट, हेमचन्द्र, विश्वनाथ और पण्डितराज जगन्नाथ विशेष हैं। इन आचार्यों में हेमचन्द्र जैन-आचार्य हैं, जिन्होंने अपनी बहुमुखी प्रतिभा एवं साहित्य साधना से न केवल देशी अपितु डा० पिटर्सन जैसे विदेशी विद्वानों को भी चमत्कृत किया है।

अलंकार-शास्त्र पर जैनाचार्यों द्वारा प्राकृत भाषा में निबद्ध सर्वप्रथम रचना 'अलंकार दप्पण' है, जिनका काल श्री अगरचन्द नाहटा ने ८वीं से ११वीं शताब्दी माना है। यद्यपि इससे पूर्व नाट्यशास्त्र के आद्य प्रणेता भरतमुनि के समकालीन आर्यरक्षित (ईसा की प्रथम शती) ने 'अनुयोग-द्वारसूत्र' में नौ रसों का विवेचन किया है तथापि सामान्य विवेचन होने से इन्हें विशुद्ध आलंकारिक-परम्परा से नहीं जोड़ा जा सकता है। तदनन्तर वाग्भट प्रथम (ईसा की १२वीं शती का पूर्वार्द्ध) ने वाग्भटालंकार, हेमचन्द्र (१२वीं शती) ने काव्यानुशासन, रामचन्द्र-गुणचन्द्र (१२वीं शती) ने नाट्यदर्पण, नरेन्द्रप्रभुसूरि (१३वीं शती) ने अलंकारमहोदधि, अमरचन्द्रसूरि (१३वीं शती) ने काव्यकल्पलतावृत्ति, विनयचन्द्रसूरि (१३वीं शती) ने काव्यशिक्षा, विजयवर्णी (१३ वीं शती) ने शृंगारार्णवचन्द्रिका, अजितसेन (१३वीं शती) ने अलंकारचिन्तामणि, वाग्भट द्वितीय (१४वीं शती) ने काव्यानुशासन, मण्डन मन्त्री (१४वीं शती) ने अलंकारमण्डन, भावदेवसरि (१४वीं शती) ने काव्यालंकारसारसंग्रह, पद्मसुन्दरगणि (१६वीं का उत्तरार्द्ध) ने अकबर-साहिशृंगारदर्पण और सिद्धिचन्द्रगणि (१७वीं शती) ने काव्यप्रकाश खण्डन की स्वतन्त्र रचना की। इनके अतिरिक्त अलंकार शास्त्रीय ग्रन्थों ने अनेक टीकाकार भी हुए हैं, जिनमें महाकवि रुद्रट काव्यालंकार पर श्वेताम्बर जैन विद्वान् नमिसाधु द्वारा वि०सं० ११२५ में लिखित टीका और वाग्देवतावतार आचार्य मम्मट-रचित काव्यप्रकाश पर माणिक्य-चन्द्रसूरि द्वारा वि०सं० १२६६ में लिखित संकेत नामक टीकाएं अतिप्रसिद्ध हैं।

प्रस्तुत लेख में नाट्यदर्पण के प्रणेता आचार्य रामचन्द्र-गुणचन्द्र का विवेचन ही अभीष्ट है। रामचन्द्र-गुणचन्द्र का नाम प्रायः साथ-साथ लिया जाता है। इन विद्वानों के माता-पिता और वंश इत्यादि के विषय में कोई उल्लेख नहीं मिलता है। अतः इतना ही कहा जा सकता है कि ये दोनों विद्वान् सतीर्थ्य थे। आचार्य रामचन्द्र ने अपने अनेक ग्रन्थों में अपने को आचार्य हेमचन्द्र का शिष्य बतलाया है[1]। ये उनके पट्टधर शिष्य थे। इसकी पुष्टि प्रभावकचरित के इस

---

१. (क) शब्द-प्रमाण-साहित्य-छन्दोलक्ष्मविद्यायिनाम्।
श्री हेमचन्द्रादानां प्रसादाय नमो नमः॥
—हिन्दी नाट्यदर्पण, व्याख्याकार—आचार्य विश्वेश्वर, प्रका० दिल्ली विश्वविद्यालय, १९६१, अन्तिम प्रशस्ति, पद्य १.

(ख) सूत्रधार-दत्तः श्रीमदाचार्यहेमचन्द्रस्य शिष्येण रामचन्द्रेण विरचितं नलविलासाभिधानमाद्यं रूपकमभिनेतुमादेशः।
—नलविलास-नाटक, सम्पादक—जे०के० गोण्डेकर, प्रका० गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, बड़ौदा, पृ० १.

(ग) श्रीमदाचार्यश्रीहेमचन्द्रशिष्यस्य प्रबंधशतकर्तुर्महाकवेः रामचन्द्रस्य भूयांसः प्रबंधाः। —निर्भयभीम-व्यायोग, सम्पादक —पं० हरगोविन्ददास बेचरदास, प्रका०—हर्षचन्द भूराभाई, वाराणसी, वी०सं० २४३८, पृ० १.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कथन से भी होती है कि—एक बार तत्कालीन गुर्जरनरेश सिद्धराज जयसिंह ने आचार्य हेमचन्द्र से पूछा कि—आपके पट्ट के योग्य गुणवान शिष्य कौन हैं ?[1] इसके उत्तर में हेमचन्द्र ने रामचन्द्र का नाम लिया था।[2]

रामचन्द्र अपनी असाधारण प्रतिभा एवं कवि-कर्म-कुशलता के कारण कविकटारमल्ल की सम्मानित उपाधि से अलंकृत थे। वह उपाधि उन्हें सिद्धराज जयसिंह ने प्रसन्न होकर प्रदान की थी। इसका उल्लेख रत्नमन्दिरगणि गुम्फित उपदेशतरंगिणी में[3] इस प्रकार मिलता है कि—एक बार जयसिंहदेव ग्रीष्म-ऋतु में क्रीडोद्यान जा रहे थे, उसी समय मार्ग में रामचन्द्र मिल गये। उन्होंने रामचन्द्र से पूछा कि—ग्रीष्म-ऋतु में दिन बड़े क्यों होते हैं ? इसके उत्तर में उन्होंने (तत्काल पद्य रचना करके) निम्न पद्य कहा—

देव श्रीगिरिदुर्गमल्ल भवती दिग्जैत्रयात्रोत्सवे
धीवद्धीरतुरंगनिष्ठुरखुरक्षुण्णक्षमामण्डलात् ।
वातोद्धूतरजोमिलत्सुरसरित्संजातपंकस्थली-
दूर्वाचुम्बनचंचुरा रविहयास्तेनाति वृद्धं दिनम् ॥

यह सुनकर सिद्धराज द्वारा पुनः "तत्काल पत्तननगर का वर्णन करो" यह कहे जाने पर उन्होंने निम्न पद्य की रचना की—

एतस्यास्य पुरस्य पौरवनिताचातुर्यता निर्जिता,
मन्ये नाथ ! सरस्वती जडतया नीरं वहन्ती स्थिता ।
कीर्तिस्तम्भमिषोच्चदण्डरुचिरामुत्सूत्र्यवाहावलीं-
तन्त्रीकां गुरुसिद्धभूपतिसरस्तुम्बीं निजां कच्छपीम् ॥

तदनन्तर सिद्धराज जयसिंह ने प्रसन्न होकर महाकवि रामचन्द्र को सबके सामने 'कवि कटारमल्ल' की उपाधि प्रदान की थी।

महाकवि रामचन्द्र समस्या-पूर्ति करने में भी बहुत चतुर थे। एक बार वाराणसी से विश्वेश्वर कवि पत्तन नामक नगर में आये तथा कवि आचार्य हेमचन्द्र की सभा में गये। वहाँ राजा कुमारपाल भी विद्यमान थे। विश्वेश्वर ने कुमारपाल को आशीर्वाद देते हुए कहा—'पातु वो हेमगोपालः कम्बलं दण्डमुद्वहन्' यतः राजा जैन थे, अतः उन्हें कृष्ण द्वारा अपनी रक्षा की बात अच्छी नहीं लगी और उन्होंने क्रोध भरी दृष्टि से देखा। तभी रामचन्द्र ने उक्त श्लोकार्ध की पूर्ति के रूप में 'षड्दर्शन-पशुग्राम चारयन् जैन-गोचरे" यह कहकर राजा को प्रसन्न कर दिया।[4]

---

१. राजा श्रीसिद्धराजेनान्यदा नुयुयुजे प्रभुः ।
भवतां कोऽस्ति पट्टस्य योग्यः शिष्यो गुणाधिकः ॥
—प्रभावकचरित (प्रभाचन्द्राचार्य), सम्पादक—जिनविजय मुनि, प्रका० सिंघी जैन ग्रन्थमाला, अहमदाबाद, १९४० हेमचन्द्रसूरिप्रबंध, पद्य १२९.

२. आह श्रीहेमचन्द्रस्य न कोऽप्येवं हि चिन्तकः ।
आद्योऽप्यभूदिग्पालः सत्पात्राम्भोधिचन्द्रमाः ॥
सज्ज्ञानमहिमस्थैर्य मुनीनां किं न जायते ।
कल्पद्रुमसमे राज्ञि त्वयीदृशि कृतास्थितौ ॥
अस्त्यामुष्यायणो रामचन्द्राख्यः कृतिशेखरः ।
प्राप्तरेखः प्राप्तरूपः संघे विश्वकलानिधिः ॥
—वही, पद्य १३१-१३३.

३. द्रष्टव्य—उपदेशतरंगिणी (रत्नमन्दिरगणि), प्रका० हर्षचन्द्र मूराभाई, वाराणसी, वी०नि०सं० २४३७, पृ० ८९.

४. प्रबंधचिन्तामणि (मेरुतुंगाचार्य), सम्पादक—जिनविजय मुनि, प्रका० सिंघी जैन ज्ञानपीठ, १९३५, कुमारपालादिप्रबंध, पृ० ८९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य रामचन्द्र की विद्वत्ता का परिचय उनकी स्वलिखित कृतियों में भी मिलता है। रघुविलास में उन्होंने अपने को 'विद्यात्रयीचरणम्' कहा है।[1] इसी प्रकार नाट्यदर्पण-विवृत्ति की प्रारम्भिक प्रशस्ति में—'त्रैविद्यवेदिनः' तथा अन्तिम प्रशस्ति में व्याकरण, न्याय और साहित्य का ज्ञाता कहा है।[2]

प्रारम्भ में कहे गये प्रभावकचरित और उपदेशतरंगिणी से यह ज्ञात होता है कि आचार्य हेमचन्द्र और सिद्धराज जयसिंह समकालीन थे तथा उस समय तक रामचन्द्र अपनी असाधारण प्रतिभा के कारण प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके थे। सिद्धराज जयसिंह ने सं० ११५० से सं० ११९९ (ई० सन् १०९३-११४२) पर्यन्त राज्य किया था।[3] मालवा पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष में सिद्धराज का स्वागत समारोह ई० सन् ११३६ (वि० सं० ११९३) में हुआ था, तभी हेमचन्द्र का सिद्धराज से प्रथम परिचय हुआ था।[4] सिद्धराज की मृत्यु सं० ११९९ में हुई थी।[5] इस बीच रामचन्द्र का परिचय सिद्धराज से हो चुका था तथा प्रसिद्धि भी प्राप्त कर चुके थे। सिद्धराज जयसिंह के उत्तराधिकारी कुमारपाल ने सं० ११९९ से १२३०[6] तथा उसके भी उत्तराधिकारी अजयदेव ने सं० १२३० से १२३३ तक गुर्जर भूमि पर राज्य किया था। इसी जयदेव के शासनकाल में रामचन्द्र को राजाज्ञा द्वारा तप्त-ताम्र-पट्टिका पर बैठाकर मारा गया था।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि आचार्य रामचन्द्र का साहित्यिक काल वि० सं० ११९३ से १२३३ के मध्य रहा होगा।

महाकवि रामचन्द "प्रबन्धशतकर्ता" के नाम से विख्यात हैं। इसके सम्बन्ध में विद्वानों ने दो प्रकार के विचार अभिव्यक्त किये हैं। कुछ विद्वान् "प्रबन्धशतकर्ता" का अर्थ 'प्रबन्धशत नामक ग्रन्थ के कर्ता' ऐसा करते हैं। दूसरे विद्वान् इसका अर्थ 'सौ ग्रन्थों के प्रणेता' के रूप में स्वीकार करते हैं। डॉ० के० एच० त्रिवेदी ने अनेक तर्कों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि रामचन्द्र सौ प्रबन्धों के प्रणेता थे।[7] यह तर्क अधिक मान्य है, क्योंकि ऐसे विलक्षण एवं प्रतिभासम्पन्न विद्वान् के लिए यह असम्भव भी प्रतीत नहीं होता है। उन्होंने अपने नाट्यदर्पण में स्वरचित ११ रूपकों का उल्लेख किया है। इसकी सूचना प्रायः 'अस्मदुपज्ञे.....', इत्यादि पदों से दी गई है, जिनके नाम इस प्रकार हैं—

१. सत्य हरिश्चन्द्र नाटक,	२. नलविलास नाटक,
३. रघुविलास नाटक,	४. यादवाभ्युदय,

---

१. पंचप्रबन्धमिषपंचमुखानकेन, विद्वन्मनः सदसि नृत्यति यस्य कीर्तिः।
विद्यात्रयीचरणचुम्बितकाव्यचन्द्रं, कस्तं न वेद सुकृती किल रामचन्द्रम्॥
—नलविलास—नाटक, प्रस्तावना, पृ० ३३

२. प्राणाः कवित्वं विद्यानां लावण्यमिव योषिताम्।
त्रैविद्यवेदिनोप्यस्मै ततो नित्यं कृतस्पृहाः॥ —हिन्दी नाट्यदर्पण, प्रारम्भिक प्रशस्ति, पद्य ६१
शब्दलक्ष्म-प्रमालक्ष्म-काव्यलक्ष्म-कृतश्रमः।
वाग्विलासस्त्रिमार्गो नौ प्रवाह इव जाह्नजः॥ —वही, अन्तिम प्रशस्ति, ४

३. प्रबन्धचिन्तामणि—कुमारपालादिप्रबंध, पृ० ७६

४. हिन्दी नाट्यदर्पण, भूमिका, पृ० ३

५. द्वादशस्वथ वर्षाणां, शतेषु विरतेषु च।
एकोनेषु महीनाथे सिद्धाधीशे दिवं मते॥ —प्रभावकचरित—हेमसूरिविरचित, पृ० १६७

६. प्रबंधचिन्तामणि—कुमारपालादिप्रबंध, पृ० ६५

७. त्रिवेदी, के० एच०, दी नाट्यदर्पण आव रामचन्द्र एण्ड गुणचन्द्र : ए क्रिटिकल स्टडी, प्रका० एल० डी० इंस्टीट्यूट आव इन्डोलोजी, अहमदाबाद, १६६६, पृ० २१६-२२०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. राघवाभ्युदय, ६. रोहिणीमृगांक प्रकरण,
७. निर्भयभीम व्यायोग, ८. कौमुदीमित्रानन्द प्रकरण,
९. सुधाकलश, १०. मल्लिकामकरन्द प्रकरण और
११. वचनमाला नाटिका।

कुमारविहारशतक, द्रव्यालंकार और यदुविलास—ये उनके अन्य प्रमुख ग्रन्थ हैं। एतदतिरिक्त कुछ छोटे-छोटे स्तव भी पाये जाते हैं। इस प्रकार उनके उपलब्ध ग्रन्थों की कुल संख्या डॉ० के० एच० त्रिवेदी ने ४७ स्वीकार की है।[1]

गुणचन्द्र का नाम प्रायः महाकवि रामचन्द्र के साथ ही लिया जाता है। इनके स्वतन्त्र व्यक्तित्व एवं कृतित्व के सम्बन्ध में कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती है। अतः केवल इतना ही कहा जा सकता है कि गुणचन्द्र, रामचन्द्र के समकालीन और आचार्य हेमचन्द्र के शिष्यों में एक थे।

नाट्यदर्पण—यह नाट्य विषयक प्रामाणिक एवं मौलिक ग्रन्थ है। इसमें महाकवि रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने अनेक नवीन तथ्यों का समावेश किया है। आचार्य भरत से लेकर धनंजय तक चली आ रही नाट्यशास्त्र की अक्षुण्ण-परम्परा का युक्तिपूर्ण विवेचन करते हुए आचार्य रामचन्द्र ने प्रस्तुत ग्रन्थ में पूर्वाचार्य-स्वीकृत नाटिका के साथ प्रकरणिका नाम की एक नवीन विधा का संयोजन कर द्वादश रूपकों की स्थापना की है। इसी प्रकार रस की सुख-दुःखात्मकता स्वीकार करना इस ग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता है।[2] नाट्यदर्पण में नौ रसों के अतिरिक्त तृष्णा, आर्द्रता, आसक्ति, अरति और सन्तोष को स्थायीभाव मानकर क्रमशः लौल्य, स्नेह, व्यसन, दुःख और सुखरस की भी संभावना की गई है।[3] इसमें शान्तरस का स्थायीभाव शम स्वीकार किया गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ में ऐसे अनेक ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है, जो अद्यावधि अनुपलब्ध हैं। कारिका रूप में निबद्ध किसी भी गूढ़ विषय को अपनी स्वोपज्ञ विवृत्ति में इतने स्पष्ट और विस्तार के साथ प्रस्तुत किया है कि साधारण बुद्धि वाले व्यक्ति को भी विषय समझने में कठिनाई का अनुभव नहीं करना पड़ता है। इसलिए इस ग्रन्थ की कतिपय विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए आचार्य बलदेव उपाध्याय ने लिखा है कि—"नाट्य-विषयक शास्त्रीय ग्रन्थों में नाट्यदर्पण का स्थान महत्त्वपूर्ण है। यह वह शृंखला है तो धनंजय के साथ विश्वनाथ कविराज को जोड़ती है। इसमें अनेक विषय बड़े महत्त्वपूर्ण हैं तथा परम्परागत सिद्धान्तों से विलक्षण हैं, जैसे रस का सुखात्मक होने के अतिरिक्त दुःखात्मक रूप।[4]" इसके अतिरिक्त आचार्य उपाध्याय ने प्राचीन और अधुनालुप्तप्रायः रूपकों के उद्धरण प्रस्तुत करने के कारण इसका ऐतिहासिक मूल्य भी स्वीकार किया है।[5] इन सब विशेषताओं के कारण नाट्यदर्पण अनुपम एवं उत्कृष्ट कोटि का ग्रन्थ है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में दो भाग पाये जाते हैं—प्रथम कारिकाबद्ध मूल ग्रन्थ और द्वितीय उसके ऊपर लिखी गई स्वोपज्ञ विवृत्ति। कारिकाओं में ग्रन्थ का लाक्षणिक भाग निबद्ध है तथा विवृत्ति में तद्विषयक उदाहरण एवं कारिका का स्पष्टीकरण। यह ग्रन्थ चार विवेकों में विभाजित किया गया है।

इसके प्रथम विवेक में मंगलाचरण और विषय प्रतिपादन की प्रतिज्ञा के पश्चात् १२ रूपकों की सूची गिनाई

---

१. वही, पृ० २२१-२२२, नलविलास नाटक के सम्पादक जी० के० गोण्डेकर एवं नाट्यदर्पण के हिन्दी व्याख्याकार सिद्धान्तशिरोमणि आचार्य विश्वेश्वर ने उक्त ग्रन्थों की भूमिका में रामचन्द्र के ज्ञात ग्रन्थों की कुल संख्या ३९ मानी है।

२. स्थायीभावः श्रितोत्कर्षो विभावव्यभिचारिभिः।
स्पष्टानुभावनिश्चेयः सुख-दुःखात्मको रसः॥ —हिन्दी नाट्यदर्पण, ३, ७

३. वही, पृ० ३०६

४. उपाध्याय, आचार्य बलदेव, संस्कृत शास्त्रों का इतिहास, प्रका० शारदा मन्दिर, वाराणसी, १९६९, पृ० २३५

५. वही, पृ० २३५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गई है। पुनः रूपक के प्रथम भेद नाटक का स्वरूप, नायक के चार भेद, वृत्त (चरित) के सूच्य, प्रयोज्य, अम्यूह्य (कल्पनीय) और उपेक्षणीय नामक चार भेद तथा कुल अन्य भेदों के साथ काव्य में चरित निबन्धन विषयक शिक्षाओं का विवेचन किया गया है। तत्पश्चात् अंक-स्वरूप, उसमें आदर्शनीय तत्व, विषकम्भ, प्रवेशक, अंकास्य, चूलिका और अंकावतार नामक पाँच अर्थोपक्षेपक, बीज, पताका, प्रकरी, बिन्दु और कार्य नामक पाँच फल-हेतु ; आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम नाम पाँच अवस्थाएँ ; मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण नामक पाँच सन्धियाँ एवं उनके कुल ६५ (१२+१३+१३+१३+१४=६५) भेदों का सांगोपांग निरूपण किया है।

द्वितीय विवेक में नाटक के अतिरिक्त प्रकरण, नाटिका, प्रकरणी, व्यायोग, समवकार, भाण, प्रहसन, डिम, उसृष्टिकांक, ईहामृग, और वीथि नामक शेष ११ रूपकों का लक्षणोदाहरण सहित विस्तृत विवेचन किया गया है। पुनः वीथि के १३ अंगों का भी सलक्षणोदाहरण विषय प्रतिपादन किया गया है।

तृतीय विवेक में सर्वप्रथम भारती, सात्त्वती, कौशिकी और आरभटी नामक चार वृत्तियों का विवेचन किया किया गया है। पुनः रस-स्वरूप, उसके भेद, काव्य में रस का सन्निवेश, विरुद्ध रसों का विरोध और परिहार, रस-दोष, स्थायीभाव, ३६ व्यभिचारीभाव, वेपथु, स्तम्भ, रोमांच, स्वरभेद, अश्रु, मूर्च्छा, स्वेद और विवर्णता नामक आठ अनुभाव तथा वाचिक, आंगिक, सात्त्विक और आहार्य नामक चार अभिनयों का विस्तृत विवेचन किया गया है।

चतुर्थ विवेक में समस्त रूपकों के लिए उपयोगी कुछ सामान्य बातों को प्रस्तुत किया गया है। इसमें सर्वप्रथम नान्दी-स्वरूप, कविध्रुवा-स्वरूप, उसके प्रावेशिकी, नैष्क्रामिकी, आक्षेपिकी, प्रासादिकी और आन्तरी नामक पाँच भेदों का सोदाहरण प्रतिपादन, पुरुष और स्त्री पात्रों के उत्तम, मध्यम और अधम भेदों का कथन, मुख्य नायक का स्वरूप और उसके तेज, विलास, शोभा, स्थैर्य, गाम्भीर्य, औदार्य और ललित नामक आठ गुणों का विवेचन, प्रतिनायक, नायक के सहायक, नायिका-स्वरूप, नायिका के मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा नामक तीन सामान्य भेद तथा प्रोषितपतिका और विप्रलब्धा आदि प्रसिद्ध आठ भेद और स्त्रियों के यौवनबलजन्य हाव-भाव आदि आंगिक, विभ्रम-विलास आदि दस स्वाभाविक तथा शोभा-कान्ति आदि सात अयत्नज को मिलाकर कुल बीस अलंकारों का विवेचन किया गया है। पुनः नायिकाओं का नायक के साथ सम्बन्ध, नायिकाओं की सहायिकाएँ, पात्रों द्वारा भाषा प्रयोग के औचित्य का विस्तृत विवेचन, पात्रों के लिए पात्रों द्वारा सम्बोधन में प्रयुक्त नामावली तथा पात्रों के नामकरण में ज्ञातव्य बातों आदि का विवेचन किया गया है। अन्त में प्रथम और द्वितीय विवेक में कहे गये १२ रूपकों के अतिरिक्त सट्टक, श्रीगदित, दुर्मिलिता, प्रस्थान, गोष्ठी, हल्लीसक, शम्पा, प्रेक्षणक, रसक, नाट्य-रासक, काव्य, भाण और भाणिका नामक १३ अन्य रूपकों का सलक्षण विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org